

गुले अब्बास

कथा ज़ाकिर हुसैन
चित्र पूजा पोट्टनकुलम



मैं एक छोटे से काले बीज में रहता था। मेरे घर की दीवारें खूब मज़बूत थीं।

ये दीवारें मुझे गर्मी–सर्दी से भी बचातीं थीं। मेरा घर काली मिट्टी में दबा दिया गया कि कोई उठा कर फेंक न दे और मैं किसी शरीर लड़के के पाँव तले न आ जाऊँ।



ज़मीन की मद्धिम गर्मी मुझे बहुत अच्छी लगती थी। मैंने ये सोचा था कि बस हमेशा मज़े से यहीं रहूँगा।



मगर मेरे कान में अक्सर मीठी–मीठी सुरीली आवाज़ आती थी, "बढ़ो, आगे बढ़ो।" लेकिन मैं ज़मीन में अपने घर के अन्दर ऐसे मज़े में था कि मैंने इस आवाज़ के कहने पर कान न धरा।



और जब उसने बहुत पीछा किया तो मैंने साफ़ कह दिया नहीं मैं तो यहीं रहूँगा।

बढ़ने और घर से निकलने से क्या फ़ायदा! यहीं चैन से सोने में मज़ा है।

पर यह आवाज़ बन्द न हुई। एक दिन उसने ऐसे पुर असर अन्दाज़ से मुझसे कहा "चलो, रोशनी की तरफ़ चलो।"



अब मुझसे रहा न गया। मैंने सोचा कि इस घर की दीवारों को तोड़ कर बाहर निकल ही आऊँ।



मगर दीवारें मज़बूत थीं और मैं कमज़ोर।

आखिर को अल्लाह का नाम लेकर जो ज़ोर लगाया तो खट दीवार टूट गई और मैं हरा किल्ला बनकर उससे निकल आया।



आँखें खोलकर दुनिया को देखा। कैसी ख़ूबसूरत जगह है।

और एक दिन अपनी कली का मुँह जो खोला तो सब लोग कहने लगे,

"देखो ये कैसा ख़ूबसूरत लाल–लाल गुले अब्बास है।"



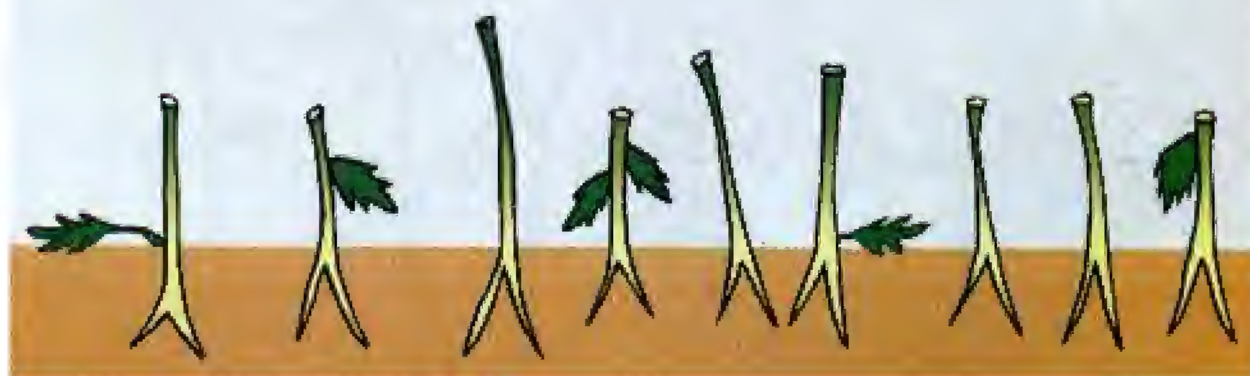
मैंने भी जी में सोचा कि इस तंग घेरे को छोड़ा तो अच्छा ही किया।



आसपास और बहुत से गुले अब्बास थे। मैं उनसे खूब बातें करता। दिन भर हम सूरज की किरणों से खेला करते थे।

और रात को चाँदनी से। ज़रा आँख लगती तो आसमान के तारे आकर हमें छेड़ कर उठा देते थे।

अफ़सोस! ये मज़े ज़्यादा दिन न रहे।



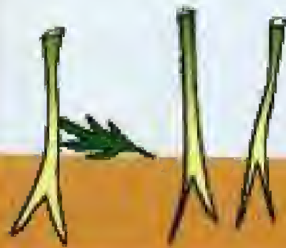
एक दिन सुबह हमारे कान में एक सख़्त आवाज़ आई।

"गुले अब्बास चाहिए हैं, गुले अब्बास।"

"अच्छा, जितने चाहिएँ ले लो।"



हमारी समझ में ये बात कुछ न आई। इतने में किसी ने कैंची से हमें डण्ठल समेत काट कर एक टोकरी में डाल दिया।





अब याद नहीं कि इस टोकरी में कितनी देर पड़े रहे। वो तो ख़ैर हुई कि मैं ऊपर था।

नहीं तो घुटकर मर जाता। शायद मैं सो गया हूँगा क्योंकि जब उठा तो मैंने देखा के पाँच–छः और साथियों के साथ मुझे भी एक ख़ूबसूरत तागे से बाँधकर किसी ने गुलदस्ता बनाया है।



आस–पास नज़र डाली तो न बाग़ की रविशें थीं, न चिड़ियों का गाना।

सड़क के किनारे एक छोटी सी मैली कुचैली दुकान थी। हज़ारों आदमी इधर से उधर जा रहे थे।

एक्के गाड़ियाँ शोर मचा रही थीं। मेरा जी ऐसा घबराया कि क्या कहूँ।



शाम होने को आई तो एक ख़ूबसूरत लड़की दुकान के पास से गुज़री। हमारी तरफ़ देखा।

फूल वाले ने मुझे और मेरे साथियों को लड़की के सामने रखा और कहा, "बेटी देखो, कैसे ख़ूबसूरत गुले अब्बास हैं। एक रुपये में गुलदस्ता, एक रुपये में।"

लड़की ने एक रूपया दिया और हमें हाथ में ले लिया। उसके हाथ नरम–नरम थे। यहाँ आकर ज़रा जान में जान आई लेकिन थोड़ी देर बाद शायद मैं बेहोश हो गया।



लड़की ने शीशे के एक गुलदान में पानी भर कर हमें पिलाया तो ज़रा तबियत ठीक हुई और मैंने सर उठाकर इधर–उधर देखा।

अब मैं एक साफ़ से कमरे में था। उसमें कई बिस्तर लगे थे।

एक तरफ़ से एक बीमार लड़की की आवाज़ सुनी–
"डाक्टर साहब, क्या मैं अच्छी नहीं होऊँगी?
क्या अब कभी चल फिर न सकूँगी?
और क्या अब कभी गुले अब्बास
देखने को न मिलेंगे?"



यह कहते कहते बच्ची की हिचकी शुरू हो गई। आँखों से आँसू पोंछ कर उसने तकिये पर करवट ली तो उसको मैं और मेरे साथी गुलदान में रखे हुए दिखाई दिये।

लड़की खुशी से खिल गई। पास जो नर्स खड़ी थी उसने हमें उठाकर उस लड़की के हाथ में दे दिया।

उस प्यारी बच्ची ने हमें चूमा और अपने गोरे गालों से लगाया। और मैंने देखा कि उसके गोरे–गोरे गालों पे हमारी सुर्ख़ी की ज़रा सी झलक आ गई।



उस वक़्त समझ में आया कि बीज का घर छोड़कर रोशनी की तरफ़ बढ़ने की ग़रज़ यही थी कि एक दुखियारी बीमार बच्ची को कम से कम थोड़ी देर की खुशी हमसे मिल जाए।

